वास्तवे हिन्दुः कः

डॉ. नारायणशास्त्री काङ्करः

हिं=हिंसां सर्वथा यस्तु, दुनुयाद् = उपतापयेत्।
स एव वास्तवे हिन्दुर्, विश्व-ख्यात-स्वकर्मणा॥ १॥

जो व्यक्ति हिंसा करने को सर्वथा उपतप्त = नष्ट कर दे, वहीं व्यक्ति अपने इस विश्वविख्यात कर्म से वास्तव में हिन्दु होता है।

हिन्दुत्वं तदिदं हिन्दो, किमस्ति कदापि साम्प्रतम्?।
'कनक'-नामतः किं सयाद्, द्यत्तूरः स्व-मूल्यवत्॥ २॥

उस प्रकार का वह हिन्दुपना वर्तमान में कभी कहते है? कनक = स्वर्ण का नाम होने से ही क्या द्यतूरा उस स्वर्ण के मूल्य वाला बन जाता है?

हिंसां किं प्राणिनां सोऽद्य, मनो-वाक्-काय-कर्मभिः।
कुर्वन् न दृश्यते कुत्र?, सत्यं सत्यं निगद्यताम्॥ ३॥

क्या वह हिन्दु कहा जाने वाला व्यक्ति अपने मन, वचन, काय और कर्मों से प्राणियों की हिंसा करता हुआ कहाँ नहीं देखा जाता? सच सच बताओ।

संस्कृतस्य परित्यागो, हिन्दोः पतन-कारणम्।
केवलं संस्कृते लभ्या, विशुद्धा हिन्दु-संस्कृतिः॥ ४॥

संस्कृत का परित्याग कर देना ही हिन्दुओं के पतन का कारण है। केवल संस्कृत-वाङ्मय में ही विशुद्ध हिन्दु-संस्कृति प्राप्त होती है।

यद्-गृहे प्राप्यते नैव, गीता-रामायणादिकम्।
हिन्दुः किं सोऽपि वक्तव्यः?, रचयमेव विचार्यताम्॥ ५॥

जिस के घर में गीता, रामायण, पुराण आदि ग्रन्थ नहीं पाये जाते, क्या वह व्यक्ति भी हिन्दु कहा जाना चाहिये? स्वयं ही विचार किया जाये।

हिन्दुत्वस्य प्रसारार्थम्, अन्यत्र क्रियते श्रमः।
यथेष्ट-लाभदो नासौ, को न वेत्तीति बुद्धिमान्॥ ६॥

हिन्दुपने का प्रसार करने के लिये संस्कृत-वाङ्मय का अध्ययन अध्यापन और तदनुसार आचरण न करके दूसरे-दूसरे स्थान में परिश्रम किया जाता है, परन्तु वह परिश्रम मनोवान्छित लाभ देने वाला नहीं बनता-इस बात को कौन बुद्धिमान व्यक्ति नहीं जानता?

अत्यल्पोऽप्यभिमानश्चेद्, हिन्दुत्वं प्रति मानसे।
विहाय सकलं तर्हि, संस्कृतं प्राक् सुसेव्यताम्॥ ७॥

यदि मन में हिन्दु होने के प्रति थोड़ा सा भी गर्व है तो सब कुछ त्याग कर सबसे पहले पठन-पाठन और तदनुसार आचरण द्वारा संस्कृत-वाङ्मय को अच्छी तरह अपना लेना चाहिये।

तस्यैवाध्ययनाद् बोधात्, सम्यगाचरणात् तथा।
हिन्दुत्वं जन्यते नूनं, सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम्॥ ८॥

उसी संस्कृत-वाङ्मय के अध्ययन से, ज्ञान से और अच्छी तरह तदनुसार आचरण करने से व्यक्ति में हिन्दुपना उत्पन्न होता है- यह बात मैं सच सच कहता हूँ।

अद्य देशे यथाऽङ्ग्रेज्या, राज्यं सर्वत्र वर्त्तते।
तथैव संस्कृतं चापि, सर्वथैव प्रचार्यताम्॥ ९॥

आज देश में जिस प्रकार अग्रेंजी का सब जगह साम्राज्य है- उसी प्रकार संस्कृत का भी सभी प्रकार से प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिये।

तेनै वेष्टस्य लाभः स्यात्, तेनैव विश्व-मङ्गलम्।
तेनैवात्र परत्रापि, सुखं शान्तिश्च लभ्यते॥ १०॥

वैसा करने से ही अभीष्ट-लाभ होगा, वैसा करने से ही विश्व-कल्याण होगा और वैसा करने से ही इहलोक और परलोक में भी सुख और शान्ति मिलेगी।

शङ्काकाऽप्यत्र नोकार्या, शाश्वतं सत्यमुच्यते।
हिन्दुत्वं सार्थकं कर्त्तुं, संस्कृतं प्राक् सुसेव्यताम्॥ ११॥

इस विषय में कुछ भी शङ्का मत करना। यह मैं शाश्वत सत्य कहता हूँ। अपने हिन्दु होने को सार्थक बनाने के लिये सबसे पहले संस्कृत वाङ्यमय को अध्ययन अध्यापन द्वारा और तदनुसार आचरण करके भली भाँति अपना लेना चाहिये।

त्यक्त्वा स्व-हिन्दु-संस्कृति-मत्र जनास्तास्ता अन्यान्य-संस्कृतीः।
यदाऽवलम्बितवन्तस्-तदा हि ते स्वे सुख-शान्ती व्यनाशयन्॥ १२॥

जब यहाँ लोगों ने अपनी हिन्दु-संस्कृति को त्याग कर दूसरी दूसरी संस्कृतियों को अपना लिया, तभी से उन्होंने अपनी सुख-शान्ति को भी विनष्ट कर दिया।

हिन्दु-संस्कृतिरेवात्र, प्राचीन-भारतीय-संस्कृतिर्वर्त्तते।
यामवलम्ब्य कोऽप्यत्र, सुखशान्तितो जीवितुमवसरं लभते॥ १३॥

हिन्दु-संस्कृति ही यहाँ प्राचीन भारतीय संस्कृति है- जिसको अपनाकर कोई भी यहाँ सुख शान्ति से जीवित रहने के लिये अवसर प्राप्त कर लिया करता है।

यदा स्व-हिन्दु-संस्कृतिस्-, त्यक्ता तदैव देशं भ्रष्टाचाराः।
स्व-जाले निगडितवन्त, इति को नहि समनुभवति मनुष्योऽधुना?॥ १४॥

जब अपनी हिन्दु-संस्कृति का परित्याग कर दिया गया- तभी से देश को नाना प्रकार के भ्रष्टाचारों ने अपने जाल में जकड़ लिया, इस बात को अब कौन मनुष्य अच्छी तरह से अनुभूत नहीं करता है?

वैदिक-वाङ्मयं तथा, संस्कृत-वाङ्मयं तु दुराचारानिमान्।
रक्षत आत्मनि नैकान्, मार्गान् रोद्धुं यदि तत्रावधीयेत॥ १५॥

वैदिक-वाङ्मय तथा संस्कृत-वाङ्गमय ये दोनों इन भ्रष्टाचारों को रोकने के लिये अपने भीतर अनेक मार्ग रखते हैं, यदि उन पर ध्यान दिया जाये।

समस्त-हिन्दु-संस्कृतिर्-वैदिक-संस्कृत-वाङ्मयेऽद्यापि सुलभा।
किन्तु तदनुशीलयितुं, कस्य समीपे बहुमूल्य-समयोऽस्तीह?॥ १६॥

सम्पूर्ण हिन्दु-संस्कृति आज भी वैदिक-वाङ्मय और संस्कृत-वाङ्मय में सुलभ है। किन्तु उस वाङ्मय का अनुशीलन करने के लिये यहाँ किसके पास बहुमूल्य समय है?

संस्कृत-शिक्षाऽनिवार्य-, रूपेण दीयते नहि सर्वेभ्यः।
तेनैव राष्ट्र-चरितं, प्रतिक्षणं क्षीयमाणं दृश्यते॥ १७॥

संस्कृत-शिक्षा सभी को अनिवार्य रूप से नहीं दी जाती है, उसी कारण राष्ट्र का चरित्र प्रतिक्षण क्षीण होता हुआ देखा जा रहा है।

संस्कृत-विद्वांसो नहि, सन्ति सङ्कटितास्तेनैव प्रशासनम्।
संस्कृत-शिक्षामुपेक्ष्य, राष्ट्रचारित्र्य-ह्रास-रोद्यनेऽक्षमम्॥ १८॥

संस्कृत-विद्वान् भी सङ्कटित नहीं हैं। उसी कारण प्रशासन संस्कृत की उपेक्षा करके राष्ट्र के चरित्र के ह्रास को रोकने में असमर्थ बना हुआ है।

सत्यं त्वेतदेव यत्, स्वराष्ट्रं प्रति प्रेम दुर्लभमेवाभूत्।
तेनैवं राष्ट्रमेतद्, विविध-समस्याभिर्ग्रस्तं दृश्यतेऽद्य॥ १९॥

सच तो यही है कि लोगों का अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम दुर्लभ ही हो गया है। उसी कारण आज यह राष्ट्र विविध समस्याओं से ग्रस्त दीख रहा है।

सर्वे स्वार्थिना हन्त!, जाता नानुभवन्त्यनेनान्य-हानिम्।
मिथो हानिं प्रापयन्, न कश्चिदपि सुखं शान्तिं प्राप्नोप्यत्र॥ २०॥

दुःख है, सभी स्वार्थी हो गये हैं और इससे दूसरों की होनी वाली हानि का अनुभव नहीं करते हैं। आपस में एक दूसरे को हानि पहुँचाता हुआ। वहाँ कोई भी सुख शान्ति नहीं पा रहा है।

कथं स्वराष्ट्रेऽत्र प्रेम, भवताद् जने जने सुख-शान्तिकारकम्?
इत्येव शोचं शोच-मिह प्रकटितवानस्मि स्वां मनोव्यथाम्॥ २१॥

कैसे यहाँ अपने राष्ट्र में सुख-शान्ति करने वाला प्रेम जन जन में उत्पन्न हो? यही सोच सोच कर मैंने अपनी मनोव्यथा यहाँ प्रकटित की है।

सम्प्रति शास्त्रेषूक्तां, हिन्दु-संस्कृतिं परिपाल्यैव यदि जनाः।
मां शोक-निर्मुक्तमिह, कुर्युस्तर्हि बहु बहु तत्कृतज्ञः स्याम्॥ २२॥

अब यदि लोग शास्त्रों में बतायी गयी हिन्दु-संस्कृति का परिपालन करके ही मुझको यहाँ शोकमुक्त कर दें तो मैं उनका बहुत कृतज्ञ बनूँगा।

हिन्दु-संस्कृति-शून्या, संस्कृतानाघृत-वर्त्तमान-शिक्षा तु।
न चारित्र्य-शुद्धयै न च, दुराचार-रोधनायैवालमिहास्ति॥ २३॥

हिन्दु-संस्कृति से शून्य और संस्कृत पर अनाधारित वर्त्तमान शिक्षा तो न चरित्र को शुद्ध करने के लिये और न दुराचारों को ही रोकने के लिये यहाँ समर्थ है।

संस्कृतमङ्ग्रजीजीवत्-नापि कठिनं नाप्यवैज्ञानिकं चास्ति।
तत्तु सरलातिसरलं, मनःशोधकं भ्रष्टाचार-नाशकम्॥ २४॥

संस्कृत अग्रेंजी की तरह न कठिन है और न अवैज्ञानिक ही है। वह तो सरल से सरल, मन को शुद्ध करने वाली और भ्रष्टाचार को नष्ट करने वाली है।

संस्कृत-शिक्षार्थिनेतु, मम गृहमनावृत-द्वारमेव बोध्यम्।
संस्कृतमिह निःशुल्कं, शिक्षयित्वा हि तं स्वं धन्यं मंस्ये॥ २५॥

संस्कृत-शिक्षार्थी के लिये तो मेरे घर को सदा खुला दर्वाजा वाला ही समझना चाहिये। यहाँ उस शिक्षार्थी को निःशुल्क संस्कृत सिखा कर तो मैं अपने आपको धन्य ही मानूँगा।

ऊनत्रिंशे केसर-,विहारे विद्या-वैभव-भवनेऽत्र।
जगत्पुराख्य-जयपुरे, वासी कोविद-कुल-किङ्करः॥ २६॥
स्वहार्दं निवेद्यैवं, सर्वजन-मङ्गलाभिलाषुकोऽयम्।
विरमाम्यहमिहैव, प्रणमन् नारायणकाङ्करः॥ २७॥

यहाँ विद्या-वैभव-भवन, २९ केसर-विहार, जगतपुरा, जयपुर-३०२०१७ (राज.) नारायणकाङ्कर अपना हार्दिक भाव इस प्रकार निवेदित करके सभी को प्रणाम करता हुआ अब यही विराम ग्रहण करता हूँ।

राष्ट्रपति सम्मानित,
पीठाचार्य, संस्कृत प्रचार-प्रसार शोधपीठ,
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर